भारतीय दर्शन में सिख धर्म

12

शगुन सिक्का *

सिक्ख धर्म, जिसका जन्म 500 वर्ष पहले गुरू नानकदेव जी के अविभार्व से हुआ था। यह सिक्ख धर्म, एक एकेश्वादी धर्म है। इस धर्म के अनुयायी को सिख कहा जाता है। 1469 ई0 में पंजाब में जन्में नानक देव ने गुरमत को खोजा और गुरमत की सिख्याओं को देश देशांतर में खुद जाकर फैलाया था। उन्हें सिक्ख धर्म का पहला गुरू माना जाता है, इस गुरमत का प्रचार बाकि 9 गुरूओं ने भी किया। सिक्ख एक ही ईश्वर मानते है, जिसे वे एक ओंकार कहते है अर्थात ईश्वर अकाल और निरंकार है।

भारतीय धर्मों में सिक्ख धर्म का सपना पवित्र एवं अनुपम स्थान है, सभी गुरूओं ने अपने–अपने समय के भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधकारियों, जर्जर रूढ़ियों और पाखंडों को दूर करते हुए जन–साधारण को धर्म के ठेकेदारों, पण्डों, पीरों आदि के चंगुल से मुक्त करवाया। सिक्ख धर्म ने प्रेम, सेवा, परिश्रम, परोपकार और भाई चारे की नींव पर इस ध र्म को अग्रसर किया।

गुरू नानक का आविर्भाव जिन दिनों हुआ था, उन दिनों भारतवर्ष का हिन्दू समाज अनेक प्रकार की जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त था। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली इस्लाम धर्म का प्रवेश भी हो चुका था। आपसी भेदभाव पहले से ही बहुत जटिल सामाजिक व्यवस्था को और अधिक उलझाता जा रहा था। धार्मिक साधना के क्षेत्र में रामानन्द, नामदेव और कबीर जैसे कई महिमाशाली व्यक्तित्व प्रकट हो चुके थे जो जाति–पाँति तथा साम्प्रदायिक भेदभाव मिटाने का प्रयास कर चुके थे, पर भेदभाव की मनोवृति कठोरतर सिद्ध हुई थी। जिस किसी ने जातिभेद को हटाने का प्रयास किया, उसी के नाम पर एक नए सम्प्रदाय की स्थापना हो गई।

स्मरणीय है कि उत्तर मध्यकाल में भक्ति का आन्दोलन विराट जन–आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ था। सिक्ख गुरूओं ने निराकार–निरंजन–परम भक्तिमार्ग का प्रचार किया। इस बात में अन्यान्य निर्गुणमार्गी सन्तों से वे एक बात में विशिष्ट बने रहे।

गुरू ने परमात्मा को सत्य–रूप माना जाता है। वह अतीत का सत्य है, वर्तमान का है और भविष्य का भी। वह त्रिकालातीत सत्य है।

आदि सचु, जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी सचु।

सत्य का अर्थ ही है है। परम्परा–क्रम से हम जिस सच्चिदानन्द को सुनते आए है उसके तीन तत्त्व हैं रू सत, चित, आनन्द। उसकी सत्ता त्रिकाल में है इसलिए वह सत् है। काल हमारी सीमित दृष्टि का आभासित तत्त्व है। इसलिए केवल यह कहना है कि वह अतीत, वर्तमान और भविष्य में बना रहता है, बहुत कम करके कहना है। वह काल से परे है–

*असि0 प्रोफे0, हिन्दी विभाग, श्री गुरू तेग बहादुर, खालसा कालिज, श्री आनन्दपुर साहेब, नगलाडेम

अकाल–रूप है। वह अयोनि है, स्वयम्भू हैरू अकाल मूरति अजूनी सैंभं गुरू परसादि। श्रीमद्भागवत में भी माता देवकी के मुख से कहलवाया गया हैरू

सत्यव्रतं सत्यापरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिर्निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यम् ऋत सत्य नेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये।।

सो, गुरूजी परम प्राप्तव्य को सत्य–रूप मानते हैं। जो सत्य–रूप है वह सत्य से ही प्राप्त हो सकता है, मौन सेकृ व्रत से, उपवास से, कृच्छ आचारों से उसे नहीं पाया जा सकता। सिद्धियों से, सांसारिक समृद्धियों से, धन से, मान से वह अलभ्य (अलह) है।

उसके पाने का मार्ग है, उसी के नाम–गुण का श्रवण, उसी का मनन और उसी का ध्यान–श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

श्रवण का बहुत महात्म्य है–

सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।।

सुणिऐ अन्धे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै अखगाहु।।

नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

नाम श्रवण करने से योग तथा उसके भेदों का ज्ञान होता है। नाम श्रवण करने से शास्त्रों व स्मृतियों का तात्पर्य समझ में आ जाता है। इससे भक्तों के हृदय में सदैव आनन्द बना रहता है। प्रभु का नाम सुनने से दुरूखों और पापों का नाष हो जाता है। फिर मनन भी आवश्यक है–

मंने पावहि मोख दुआरू। मंनै परवारै साधारू।

मंने तरै तारे गुरू सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।।

ऐसा नामु निरंजन होई। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

मनन करने से मनुष्य मोक्ष का द्वार (ज्ञान) प्राप्त कर लेता है। मनन करने वाला मनुश्य परावरपुर और अतर का धार पा जाता है। ईष्वर के नाम का मनन करने से गुरू का शिष्य (सिक्ख) आप भी संसार–समुद्र से तर जाता है और उपदेश देकर अन्य लोगों को भी तार लेता है। गुरू नानकजी कहते हैं कि ईश्वर के नाम का मनन करने वाला कोई व्यक्ति भिक्षकु बनकर भिक्षा माँगता नहीं घूमता। उस निरंजन (निश्कलुश परमात्मा) का पवित्र नाम ऐसा फलदायक है। अवश्य ही यदि कोई व्यक्ति हृदय से उसे मनन करना जानता हो, तो।

निधिध्यासन के लिए पंच शब्द का प्रयोग हुआ है। पंच या पंज शब्द का प्रयोग गुरूजी ने अन्यत्र भी किया है। जान पड़ता है यह संस्कृत के प्रज्ञा का पंजाबी रूप है। शुभ बुद्धि ही प्रज्ञा या पंजा है–

पंच परवाण पंच परधानु।

पंचे पावहि दरगहि मानु।।

पंचे सोहहि दरि राजानु।

पंचा का गुरू एकु धिआनु।।

प्रज्ञा ही प्रमाण है, प्रज्ञा ही प्रधान है। प्रज्ञा से ही दरगाह में मान मिलता है। प्रज्ञा

का ध्यान एकमात्र गुरू ही होना चाहिए। जिस मनुष्य की प्रज्ञा एकमात्र गुरूपरक होती है, वही स्थितप्रज्ञ होता है। उपनिषदों में तो प्रज्ञान को ब्रह्म ही कहा गया है–प्रज्ञानं ब्रह्म!

गुरू नानक का परमात्मा पर अखंड विश्वास था। वे मानते थे कि हमारे प्रत्येक श्वास–प्रश्वास का हिसाब उसके पास है। ऐसा भक्त ही सच्चे अर्थों में निर्भय हो सकता है। जब उसकी मर्जी के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, तो मृत्यु का भय और जीवन का लोभ दोनों ही मिथ्या सिद्ध होते है। भक्त न तो मरण की चिन्ता से उद्विग्न होता है, न जीवन के प्रलोभनों से विचलित–

मरणे की चिन्ता नहीं, जीवन की नहीं आस।
तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास।।

भय का अस्तित्व ऐसे भक्त के लिए है ही नहीं। केवल एक बात का ध्यान उसे बना रहता हैरू कहीं ऐसा न हो कि मन सत्य–मार्ग से विचलित हो जाए। परन्तु जिसे सत्य का साक्षात्कार हो गया है– सत्य, जो स्वयं परमात्मा का स्वरूप है–उसका यह भय मिट जाता है। सत्य का भय उसे परमात्मा के और निकट ले आ देता है। वह और भी मगन होकर भगवद्रस का पान करने लगता है। जिसने ज्ञानलभ्य इस महारस का पान कर लिया है, उसकी सांसारिक भोगवष्त्ति निवृत्त हो जाती है–

मन वैरागी धरि वसै सच भै राता होइ।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ।।

भारतवर्ष में जातिभेद और छूतछात का मनोभाव दीर्घकाल से चला आ रहा है। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व यह मनोभाव और भी तीव्र था। हमारे इस देश में अनेक मनीशी हुए हैं, जिन्होंने संसार के समस्त पदार्थों के ऊपरी भेदों को, नानात्व को मिथ्या बताया है और एक ही अद्वैततत्त्व को सत्य घोषित किया है।

परन्तु इस विस्मयकारी चिन्तन के बावजूद सामाजिक भेदभाव और समाज के अनेकों वर्गों को अस्पृश्य मानते रहने का क्रम भी ज्यों–का–त्यों चलता रहा है। विचार के सत्य को परमार्थ सत्य और आचार के भेदभाव को व्यवहार सत्य मानकर संगति बैठा ली गई है। विचार और आचा के बीच दरार पैदा करने वाली ऐसी विसंगति की भी संगति लगा लेने का प्रयत्न बड़ा करिश्मा ही है, पर इस देष में वह जमके बैठ गया है।

गुरू नानक ने इस व्यवधान को दूर करने का सफल प्रयत्न किया था। दीर्घकाल से चले आए हुए एकत्व–नेह नानास्ति किंचन–की आवाज को उन्होंने नई शक्ति दी। मार्ग उनका प्रेम और मैत्री का था। उनका आदर्श निराकार, निरहंकार और निर्वैर सत्यपुरूष था, उनका बल कथनी और करनी के व्यवधान को पाटने पर था, उनका उपाय एकान्त भगवन्निष्ठा और अकुंठ शरणागति था, उनकी एक विशेष निष्ठा गुरू की शिक्षा पर थी।

कई विद्वानों ने कहा है कि गुरू की मध्यस्थता उन्होंने सामी धर्म से ली। उस धर्म में ईश्वर और जीव के बीच एक पैगम्बर मध्यस्थ का कार्य करता है। यह बात कुछ अनावश्यक आडम्बर के साथ कही जाती है।

गुरू नानकदेव को सिक्ख लोग आदिगुरू मानते है। इनके बाद नौ और गुरू हुए है। आदिगुरू ने अपना उत्तराधिकारी गुरू अंगद को बनाया था। गुरूग्रन्थ साहिब में 6 गुरूओं

की रचनाएँ मिलती है। पाँचवें गुरू अर्जुनदेव जी ने अपने पूर्ववर्ती सभी गुरूओं की वाणियाँ एकत्र की थीं। उसके बाद के गुरूओं की वाणियाँ संगृहीत नहीं हुई थीं। बताया जाता है कि दसवें गुरू गोविन्दसिंह जीत ने अपने पिता नवें गुरू (गुरू तेगबहादुर) की वाणियाँ जोड़ी थीं। उन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं को इससे अलग रखा। इस प्रकार गुरुग्रन्थ साहिब में केवल 6 गुरूओं की वाणियाँ ही संकलित हैं।

भिन्न–भिन्न विद्वानों ने इन वाणियों को अलग–अलग ढंग से गिना है। यहाँ डॉ. तारनसिंह के अनुसार इनकी संख्या लिखी जा रही है। कोशठक में श्री भाई कान्हसिंह की बताई हुई संख्या दे दी गई है। सबसे अधिक वाणियाँ गुरू अर्जुन देव सिंह की है। इस ग्रन्थ में आदिगुरू नानकदेव जी की 974 (947), गुरू अंगददेव की 62 (63), गुरू अमरदास की 907 (869), गुरू रामदास की 907 (869), गुरू अर्जुनदेव की 2218 (2312) और गुरू तेग बहादुर की 115 (?) वाणियाँ संकलित है। गणना–भेद से यह नहीं समझना चाहिए कि विद्वानों को काई पाठान्तर मिला। वस्तुतरू वाणियाँ उतनी ही हैं। अपने–अपने गिनने का ढंग अलग है।

इन वाणियों से विभिन्न गुरूओं के साहित्यिक कृतित्व का परिचय मिलता है। जिन तीन गुरूओं की वाणियाँ ग्रन्थ में नहीं संगृहीत हो सकीं, उनकी साहित्यिक प्रतिभा का कोई परिचय नहीं मिलता। ये निश्चय ही पहुँचे हुए सन्त थे, पर कदाचित् उन्होंने या तो कुछ लिखा नहीं या उन्होंने जो लिखा वह उपलब्ध नहीं हुआ। उनकी वाणियाँ यदि उपलब्ध होतीं तो गुरू गोविन्द सिंह जी–जैसे साहित्यिक आचार्य उन्हें अवश्य संकलित करते।

गुरू नानकदेव के बाद नौ गुरू हुए, उनके नाम हैंरू अंगददेव, गुरू अमरदसा, गुरू रामदास, गुरू अर्जुनदेव, गुरू हरगोविन्द, गुरू हरिराय, गुरू हरकृश्ण, गुरू तेग बहादुर और गुरू गोविन्द सिंह। इनमें कई गुरूओं ने भक्ति–भाव के भजन लिखे हैं। इन्होंने केवल भक्ति–भाव के भजन ही नहीं लिखे, बल्कि अन्यान्य अनुयायियों को भी भक्ति–भाव के भजन लिखने की प्रेरणा दी। इन गुरूओं और उनके अनुयायियों की रचनाएँ आत्मबल और चारिर्त्य–शुद्धि की प्रेरण देने वाले साहित्य में बहुत ही ऊँचा स्थान रखती है। इस सम्प्रदाय के अन्तिम गुरू गोविन्द सिंह थे। उन्होंने गुरू परम्परा समाप्त करके उसके स्थान पर गुरुग्रन्थ साहिब को प्रतिष्ठित किया। हम आगे देखेंगे कि इस महान् ग्रन्थ का सम्पादन बड़े परिश्रम के साथ किया गया था। इसके गुरूओं की वाणियाँ तो संगृहीत हैं ही, गुरू नान के पूर्ववर्ती अन्य सन्तों की भी वाणियाँ संग्रह की गई हैं।

सैंकड़ों वर्ष तक इन वाणियों के शुद्ध पाठ को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया। जब से इनका सम्पादन हुआ, उसके बाद एक अक्षर या मात्रा को भी इधर–उधर नहीं किया गया। इस प्रकार इस महान् ग्रन्थ ने जहाँ एक ओर परम तेजस्वी गुरूओं की प्रेरणप्रद वाणियाँ हमें दी हैं, वहीं दूसरी ओर समान विचार वाले पूर्ववर्ती सन्तों की वाणियाँ भी काफी सुरक्षित रूप में हमें प्रदान कीं। साहित्य का विद्यार्थी आज निश्चिन्त होकर कह सकता है कि आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले नानक–पूर्व सन्तों की वाणियाँ किस रूप में प्रचलित थीं। गुरूग्रन्थ साहिब केवल धर्म–साधकों के लिए ही परमनिधि नहीं है, वह मध्यकालीन साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी अपूर्व रत्न भंडार है। आदिग्रन्थ के अर्न्तगत महला नाम के विभागों में

गुरूओं की वाणियाँ संगृहीत हैं। प्रथम महला में आदिगुरू की वाणियाँ हैं जिनमें शब्द, अर्थ और गेय तथा सलोक (श्लोक) अर्थात् दोहाबद्ध साखियाँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें गुरू नानकदेव की अन्य रचनाएँ भी संगृहीत है।

गुरू अंगद को स्वयं गुरू नानक ने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उनके पुत्र श्री चन्द भी योग्य थे, पर उनमें संसार के प्रति औदासीन्य और उपराम का भाव था। कदाचित् इतना वैराग्य–भाव गुरू के अपने जीवन–दर्शन के अनुकूल नहीं पड़ता था। उनके मन में कर्मयोग और सेवावृत्ति की प्रवृत्ति होना आवश्यक था।

इसलिए उन्होंने अपने प्रिय शिष्य भाई लहिणा को उत्तराधिकारी चुना और उनका नाम अंगद रखा। अनुमान किया जाता है कि उन्होंने यह नाम इसलिए चुना था कि वे बताना चाहते थे कि ये उनके अंग या स्वरूप की ही देन हैं। गुरू अंगद अपने महान् गु की आशाओं के अनुरूप ही सिद्ध हुए। इनमें भगवान के अनुग्रह पर पूर्ण विश्वास था। भगवदानुग्रह से ही सच्चे गुरू की कृपा भी मिलती है। भगवान स्वयं सत्य–स्वरूप है। यह संसार सत्यात्मा का ही आवास है–एहु जग सचे की है कोठड़ी, सचे की विचि वासु।

तीसरे गुरू अमरदास (1479–1574 ई.) पहले वैष्णव थे और बाद में गुरू अंगद की कन्या से, जो भतीजे से ब्याही हुई थी, गुरू नानकदेव का एक पद सुनकर उनकी ओर आकृष्ट हुए और गुरू अंगद की सेवा में उपस्थित हो गए। गुरू अंगद के समान ही यह भी अत्यन्त विनित और मधुर–स्वभाव के भक्त थे। इनकी रचनाएँ भी गुरूग्रन्थ साहिब में संगृहीत हैं। वे सन् 1552 ई. में गुरू–गद्दी पर आसीन हुए और 1554 ई. तक विराजमान थे। गोहन्दवारण गाँव को इन्होंने अपना स्थान बनाया था और वहाँ एक बावड़ी का निर्माण कराया था। पूरे देश में धर्म–प्रचार के लिए इन्होंने 22 केन्द्र खोले थे, जिन्हें मंजी (मंच, पीठ) कहा जाता है। लंगर की प्रथ को पुष्ट किया और भेदभाव को मिटाने के लिए आदेश दिया कि लंगर से भोजन किए बिना कोई गुरू के दर्षन का अधिकारी नहीं हो सकता।

चौथे गुरू रामदास (सन् 1514–81 ई.) की रचनाएँ भी आदिग्रन्थ के चौथे महला में संगृहीत हैं। उनकी रचनाओं की संख्या 907 है। इनकी रचनाओं में कुछ कान्तभाव के भी भजन हैं, जो समकालीन कृष्णभक्त कवियों की इसी श्रेणी की रचनाओं के साथ तुलनीय हो सकते हैं। तन्मयता और आत्म–समर्पण के भाव इनकी रचनाओं में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं–

मेरा सुन्दरू कहहु मिलै कितु गली,
हरि के सन्त बतावहु मारगु हम पीछे लागी चली।
प्रिअ के बचन सुखाने हीअरे, इह चाल बनी है भली।
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई ओह, सुन्दरि हरि ढुलि मिली।
एको प्रिउ सखीआ सभु प्रिअ की जो भावै पिर सा भली।
नानक गरीबु किआ करै बिचारा हरि भावै तिहु राह चली।।

चौथे गुरू रामदासजी ने वह प्रसिद्ध जलाशय खुदवाया था जो अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध है। पहले उन्होंने रामदासपुर नामक गाँव बसाया था, पर बाद में पवित्र जलाषय के नाम पर नगर भी अमृतसर के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ।

पाँचवें गुरू अर्जुनदेव (1563–1606 ई.) की रचनाएँ आदिग्रन्थ के पाँचवें महला में संगृहीत हैं। लेकिन इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य आदिग्रन्थ का सम्पादन और संकलन है। उसमें संगृहीत पदों को एकत्र करने करने के लिए इन्होंने स्वयं घूम–घूमकर पद संग्रह किए और प्रसिद्ध भक्तों को बुलाकर अच्छे सन्तों की वाणियाँ चुनवाईं।

आदिग्रन्थ को उन्होंने गुरू अंगद प्रचारित और प्रतिसंस्कृत गुरूमुखी में भाई गुरूदास से लिखवाकर सम्वत् 1661 अर्थात् सन् 1604 ई. प्रस्तुत कराया। अन्य सभी गुरूओं की अपेक्षा इस ग्रन्थ में गुरू अर्जुनदेव की रचनाएँ अधिक हैं। वक्तव्य–विषय वहीं परम्परा–प्रचलित और भक्त–जगत् में सम्मानित गुरू महात्म्य, भगवत्भक्ति और सांसारिक सुखों की नश्वरता आदि है। इनकी सम्पादन–दक्षता के बारे में आगे लिखा जाएगा।

परवर्ती गुरूओं में गुरू तेगबहादुर (1622–75 ई.) विषेश रूप से उल्लेखनीय हैं। ये नौवें गुरू हैं। विषय तो इनके भी वही हैं जो अन्य गुरूओं द्वारा नाना भाव से कहे गए हैं, पर इनकी भाषा में पंजाबी का कम प्रभाव है और वह ब्रजभाषा के अधिक निकट हैं। गुरूमुखी में लिखे जाने के कारण वे ब्रजभाषा से कुछ भिन्न अवश्य हैं परन्तु वास्तव में उतने भिन्न हैं नहीं।

अन्तिम गुरू सुप्रसिद्ध गुरू गोविन्द सिंह (1666–1718 ई.) थे जो अपनी वीरता, सहृदयता और ईमानदारी के कारण विरोधियों में भी आदर के पात्र बन गए थे। ये स्वयं सुकवि तो थे ही, अनेक अच्छे कवियों के अश्रयदाता भी थे। इनकी रचनाएँ दशम ग्रन्थ में संगष्हीत हैं। इस पुस्तक में हमने अन्यत्र दशम ग्रन्थ पर विस्तार से विचार किया है। इनकी रचनाओं में बहुत विकसित काव्य–रूपों के दर्शन नहीं होत हैं। इनकी भाषा अन्य गुरूओं की अपेक्षा अधिक परिनिष्ठत ब्रजभाशा हैं, जिसमें प्रवाह भी है और कवित्व और अन्यान्य गुण भी विद्यमान हैं। इनके विषय में आगे विस्तार से लिखा गया है। भगवत्प्रेम को इन्होंने भी श्रेष्ठ बताया था।

निष्कर्ष

यह कोई श्रेय लेने–देने वाली बात नहीं है कि सिक्ख गुरूओं का सहज, सरल, सादा और स्वभाविक जीवन जिन मूल्यों पर आधारित था, निश्चय ही उन मूल्यों को उन्होंने परम्परागत भारतीय चेतना से ग्रहण किया था। देशकाल और परिस्थितियों की मांग के अनुसार उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ढालकर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन को गहरे में प्रभावित किया था।

सिक्ख गुरूओं ने अपने समय के धर्म और समाज व्यवस्था को प्रभावित किया था। सिक्ख गुरूओं ने अपने समय के धर्म और समाज व्यवस्था को एक नई दिषा दी। इन्होंने कभी न मुरझाने वाले सांस्कृतिक और नैति मूल्यों की भी स्थापना की। भारत दर्शन का मेरूदण्ड है सिक्ख धर्म।

सन्दर्भ ग्रन्थ

सिक्ख और सिखिम : डब्लयू एच एमसी लियोड

सिखिम : निकी– गुरिन्द्र कौर

गुरू अमरदास रचनावली : रतन सिंह जग्गी